॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

सामवेदीय

जाबालदर्शनोपनिषद्

शान्तिपाठ

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

प्रथम खण्ड

योगके आठ अङ्ग और दस यमोंका वर्णन

सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्ति और पालन करनेवाले चतुर्भुज भगवान् महाविष्णु महायोगी दत्तात्रेयके रूपमें अवतीर्ण हुए। दत्तात्रेयजी योग-साम्राज्य (-के अधिपति-पद)-पर दीक्षित हैं—वे योगमार्गके सम्राट् हैं। उनके शिष्य मुनिवर्य साङ्कृति नामसे प्रसिद्ध थे। वे गुरुके बड़े ही भक्त थे। एक दिन एकान्तमें गुरुजीकी सेवामें उपस्थित हो उन्होंने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक पूछा—'भगवन्! आठ अङ्गोंसहित योगका मेरे लिये विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये, जिसके जान लेनेमात्रसे मैं जीवन्मुक्त हो जाऊँ'॥ १—३ ॥

भगवान् दत्तात्रेयने कहा—'साङ्कृते! सुनो, मैं तुम्हें आठ अङ्गोंसहित योगदर्शनका उपदेश करता हूँ। ब्रह्मन्! यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये योगके आठ अङ्ग हैं। इनमेंसे यमके दस भेद हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य, दया, आर्जव (सरलता), क्षमा, धृति, परिमित आहार और बाहर-भीतरकी पवित्रता'॥ ४—६ ॥

'तपोधन! वेदमें बतायी हुई विधिके अतिरिक्त जो मन, वाणी और शरीरद्वारा किसीको किसी प्रकारका कष्ट दिया जाता या उसका प्राणोंसे वियोग कराया जाता है, वही वास्तविक हिंसा है; इसके सिवा दूसरी कोई हिंसा नहीं है (इस हिंसाका सर्वथा त्याग ही अहिंसा है)। मुने! आत्मा सर्वत्र व्याप्त है, उसका शस्त्र आदिके द्वारा छेदन नहीं हो सकता। हाथों या इन्द्रियोंके द्वारा उसका ग्रहण होना भी सम्भव नहीं है—इस प्रकारकी जो बुद्धि है, उसे ही वेदान्तवेत्ता महात्माओंने श्रेष्ठ अहिंसा बताया है। मुनीश्वर! नेत्र आदि इन्द्रियोंके द्वारा जो जिस रूपमें देखा, सुना, सूँघा और समझा हुआ विषय है, उसको उसी रूपमें वाणीद्वारा (अथवा संकेत आदिके द्वारा) प्रकट करना सत्य है। ब्रह्मन्! इसके सिवा सत्यका और कोई प्रकार नहीं है। अथवा सब कुछ सत्यस्वरूप परब्रह्म परमात्मा ही है, परमात्माके सिवा दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं—इस प्रकारका जो निश्चय है, उसीको वेदान्तज्ञानके पारगामी विद्वानोंने सबसे श्रेष्ठ सत्य कहा है। दूसरेके रत्न, सुवर्ण अथवा मुक्तामणिसे लेकर एक तृणके लिये भी मन न चलाना—दूसरोंकी छोटी या बड़ी किसी भी वस्तुके लिये मनमें कभी लोभ न लाना ही अस्तेय है। विद्वान् महापुरुषोंने इसीको अस्तेय (चोरी न करना) माना है। इसके अतिरिक्त महामुने! जगत्के समस्त व्यवहारोंमें अनात्मबुद्धि रखकर उन्हें आत्मासे दूर रखनेका जो भाव है, उसीको आत्मज्ञ महात्माओंने अस्तेय कहा है। मन, वाणी और शरीरके द्वारा स्त्रियोंके सहवासका परित्याग तथा ऋतुकालमें (धर्मबुद्धिसे) केवल अपनी ही पत्नीसे सम्बन्ध—यही ब्रह्मचर्य कहा गया है। अथवा काम-क्रोधादि शत्रुओंको संताप देनेवाले मुनीश्वर! मनको परब्रह्म परमात्माके चिन्तनमें संचरित करना—लगाये रखना ही सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य है। सब प्राणियोंको अपने ही समान समझकर उनके प्रति मन, वाणी और शरीरद्वारा आत्मीयताका अनुभव करना (अपनी ही भाँति उनके दुःखको दूर करने और उन्हें सुख पहुँचानेकी चेष्टा करना) ही वेदान्तवेत्ता महात्माओंके

द्वारा दया कही गयी है। पुत्र, मित्र, स्त्री, शत्रु तथा अपने आत्मामें भी सदा मनका एक-सा भाव रखना ही मेरी दृष्टिमें आर्जव (सरलता) है—सर्वत्र समतापूर्ण भावको ही मैं आर्जव कहता हूँ। मुनिश्रेष्ठ! शत्रुओंद्वारा मन, वाणी और शरीरसे भी भलीभाँति पीड़ा दी जानेपर भी बुद्धिमें तनिक भी क्षोभ न आने देना ही क्षमा है। वेदसे ही (वैदिक आज्ञाओंके पालनसे ही) संसारको मोक्षकी प्राप्ति होती है, अन्यथा नहीं—इस प्रकारका जो दृढ़ निश्चय है, उसीको वैदिकोंने धृति कहा है। अथवा 'मैं आत्मा हूँ, आत्मासे भिन्न दूसरा कुछ नहीं हूँ'—इस निश्चयसे कभी विचलित न होनेवाली जो बुद्धि है, वही सर्वोत्तम धृति है। थोड़ी मात्रामें शुद्ध सात्त्विक अन्न ग्रहण करना, उदरके दो भाग अन्नसे और एक अंशको जलसे पूर्ण करके चतुर्थ अंशको खाली रख छोड़ना—इस प्रकार जो योगमार्गके अनुकूल भोजन है, वही परिमित आहार कहा जाता है। महामुने! मिट्टी और जलसे जो अपने शरीरके मलको छुड़ाया जाता है, उसे बाह्य शौच कहते हैं तथा मनके द्वारा शुद्ध भावोंका जो मनन है, उसे मानसिक शौच माना गया है। इसके अतिरिक्त मनीषी महात्मा 'मैं विशुद्ध आत्मा हूँ' इस ज्ञानको ही सर्वश्रेष्ठ शौच (पवित्रता) कहते हैं। यह शरीर अत्यन्त मलिन है और देहधारी आत्मा अत्यन्त निर्मल है, इस प्रकार शरीर और आत्माका अन्तर जान लेनेपर किसको पवित्र किया जाय? सुव्रत! जो मनुष्य ज्ञान-शौचका परित्याग करके बाह्य शौचमें ही रमा रहता है, वह मूढ़ सुवर्णको त्यागकर मिट्टीके ढेलेका संग्रह करता है। ज्ञानरूपी अमृतसे तृप्त एवं कृतार्थ हुए योगीके लिये कोई भी कर्तव्य शेष नहीं रहता; यदि रहता है तो वह तत्त्ववेत्ता नहीं है। आत्मज्ञ महात्माओंके लिये तीनों लोकोंमें भी कहीं कोई कर्तव्य नहीं है। इसलिये मुने! तुम सब प्रकारसे प्रयत्न करके अहिंसा आदि साधनोंके द्वारा अनुभवात्मक ज्ञान प्राप्त करके आत्माको अविनाशी ब्रह्मस्वरूप समझो'॥ ७—२५॥

प्रथम खण्ड समाप्त॥ १॥

द्वितीय खण्ड

दस नियमोंका वर्णन

'तप, संतोष, आस्तिकता, दान, ईश्वरपूजा, सिद्धान्त-श्रवण, लज्जा, मति, जप और व्रत—ये दस नियम कहे गये हैं; इनका क्रमशः वर्णन करता हूँ, सुनो। वेदमें बताये हुए प्रकारसे कृच्छ्र और चान्द्रायण आदि व्रतोंद्वारा जो शरीरको सुखाया—उसे क्षीण किया जाता है, उसे ही विद्वान् पुरुष तप कहते हैं। मोक्ष क्या है तथा आत्मा कैसे और किस हेतुसे संसार-बन्धनको प्राप्त हुआ है, इन सब बातोंके विचारको ही तत्त्वज्ञ विद्वान् तप कहते हैं। दैवेच्छासे जो कुछ मिल जाय, उतनेसे ही मनुष्योंके हृदयमें जो सदा प्रसन्नता बनी रहती है, उसीको ज्ञान-मार्गपर चलनेवाले विद्वान् संतोष मानते हैं। अथवा सर्वत्र आसक्तिरहित होकर ब्रह्मा आदि देवताओंके लोकतकके सुखोंसे वैराग्य होनेके कारण जो मनमें एक स्वाभाविक प्रसन्नता बनी रहती है, महात्मा पुरुष उसीको उत्तम संतोष मानते हैं। वेदों और स्मृतियोंमें बताये हुए धर्मपर दृढ़ विश्वास होनेको ही आस्तिकता कहते हैं। क्लेशमें पड़े हुए वेदज्ञ पुरुषोंको जो न्यायोपार्जित धन अथवा अन्य आवश्यक वस्तुएँ दी जाती हैं, उसीको मैं दान कहता हूँ॥ १—७॥

'राग आदि दोषोंसे रहित हृदय, असत्य आदिसे अदूषित वाणी और हिंसा आदि दोषोंसे मुक्त जो (भगवत्प्रीत्यर्थ) कर्म हैं, उन्हींका नाम ईश्वर-पूजन है। सत्य, ज्ञान, अनन्त, सर्वोत्कृष्ट, नित्य—अविचल एवं परमानन्द-स्वरूप वही अपना अन्तर्यामी आत्मा है—इस सिद्धान्तको बारम्बार सुनना ही सिद्धान्त-श्रवण जानना चाहिये। वैदिक तथा लौकिक मार्गोंमें जो निन्दित कर्म माना गया है, उसको करनेमें जो स्वाभाविक संकोच होता है, उसे ही लज्जा कहा गया है। गुरुजनोंके कहनेपर भी वेद-विरुद्ध मार्गसे सम्बन्ध न रखते हुए सम्पूर्ण वैदिक उपदेशोंमें जो पूर्णतः श्रद्धा होती है, उसीका नाम मति है।' वेदोक्त रीतिसे ही मन्त्रोंकी बार-बार आवृत्तिको जप कहते हैं। इसके अतिरिक्त वेदोंकी ही भाँति कल्पसूत्र, धर्मशास्त्र, पुराण और इतिहासमें जो मनकी वृत्तियोंको निरन्तर लगाये रखना है—अर्थात् इतिहास-पुराण आदिका जो सदैव अनुशीलन करना है, उसीको मैं जप कहता हूँ। जप दो

प्रकारका बताया गया है—वाचिक और मानसिक। वाचिक जप 'उच्चैः' और 'उपांशु'—दो प्रकारका माना गया है। इसी प्रकार मानसिक जप भी मनन और ध्यानके भेदसे दो प्रकारका है। उच्चस्वरसे किये जानेवाले जपकी अपेक्षा उपांशु जप (अत्यन्त मन्दस्वरसे किया गया जप) हजार गुना उत्तम बताया गया है। इसी प्रकार उपांशुकी अपेक्षा मानसिक जप सहस्रगुना श्रेष्ठ कहा गया है। उच्चस्वरसे किया गया जप सब लोगोंको यथावत् फल देनेवाला होता है; परंतु यदि उस मन्त्रको नीच पुरुषोंने अपने कानोंसे सुन लिया तो वह निष्फल हो जाता है (शास्त्रीय पर्वोंपर उपवासादि करना तथा किसी प्रकारका नियम ग्रहण करना व्रत कहलाता है)'॥ ८—१६॥

॥ द्वितीय खण्ड समाप्त॥ २॥

तृतीय खण्ड

नौ प्रकारके यौगिक आसनोंका वर्णन

'मुनिश्रेष्ठ! आसन नौ प्रकारके हैं—स्वस्तिकासन, गोमुखासन, पद्मासन, वीरासन, सिंहासन, भद्रासन, मुक्तासन, मयूरासन और सुखासन। घुटनों और जाँघोंके बीचमें अपने दोनों पैरोंको भलीभाँति रखकर ग्रीवा, मस्तक और शरीरको समभावसे धारण किये रहना स्वस्तिकासन कहलाता है; इसका नित्य अभ्यास करना चाहिये। दाहिने पैरके गुल्फ (टखने)-को बायीं ओरके पृष्ठभागतक और बायें पैरके गुल्फ (टखने)-को दाहिनी ओरके पृष्ठभागतक ले जाय, इसीको गोमुखासन कहते हैं। विप्रवर! दोनों पैरोंको दोनों जाँघोंपर (व्युत्क्रमसे अर्थात् बायें पैरको दाहिनी जाँघपर और दाहिने पैरको बायीं जाँघपर) रखकर उनके अँगूठोंको दोनों हाथोंसे पीठके पीछेसे पकड़ ले। यही पद्मासन है। यह सम्पूर्ण रोगोंका भय दूर करनेवाला है। बायें पैरको दाहिनी जाँघपर रखे और शरीरको सीधा रखकर बैठे; इसको वीरासन कहा गया है। (दोनों टखनोंको अण्डकोषके नीचे सीवनीके दोनों पार्श्वोंमें ले जाय और उन्हें इस प्रकार रखे कि बायें टखनेसे सीवनीका दाहिना पार्श्व और दायें टखनेसे सीवनीका बायाँ पार्श्व लगा रहे। फिर दोनों हाथोंको घुटनोंपर रखकर सब अँगुलियोंको फैला दे। मुँहको खोलकर एकाग्रचित्त हो नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाये रखे। यह योगियोंद्वारा सदा सम्मानित होनेवाला सिंहासन कहा गया है।) दोनों टखनोंको अण्डकोषके नीचे सीवनीके दोनों पार्श्वभागोंमें (इस प्रकार) लगाकर रखे (कि पैरोंका अग्रभाग पीछेकी ओर मुड़ा रहे) और दोनों हाथोंसे पार्श्वभाग और पैरोंको दृढ़तापूर्वक बाँधकर स्थिरभावसे बैठ जाय—यह भद्रासन है, जो विषजनित रोगका नाश करनेवाला है। सीवनीकी सूक्ष्म रेखाको बायें टखनेसे दबाकर उस बायें टखनेको फिर दायें टखनेसे दबा दे तो यह मुक्तासन होता है। मुने! लिङ्गके ऊपरी भागमें बायें टखनेको रखकर फिर उसके ऊपर दाहिने टखनेको रख दे तो यह भी मुक्तासन कहलाता है। मुनिश्रेष्ठ! अपनी दोनों हथेलियोंको पृथ्वीपर टिकाकर, कोहनियोंके अग्रभागको नाभिके दोनों पार्श्वोंमें लगाये। फिर एकाग्रचित्त हो सिर और पैरको ऊँचा करके आकाशमें दण्डकी भाँति (पृथ्वीके समानान्तरमें) स्थित हो जाय। यह मयूरासन है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। जिस-किसी प्रकार बैठनेसे सुख और धैर्य बना रहे, वह सुखासन कहा गया है। असमर्थ साधक इसी आसनका आश्रय ले। जिसने आसन जीत लिया, उसने मानो तीनों लोक जीत लिये। साङ्कृते! इसी विधिसे योगयुक्त होकर तुम सदा प्राणायाम किया करो' ॥ १—१३॥

॥ तृतीय खण्ड समाप्त॥ ३॥

चतुर्थ खण्ड

नाड़ी-परिचय तथा आत्मतीर्थ और आत्मज्ञानकी महिमा

'साङ्कृते! मनुष्यका शरीर अपने हाथके मानसे ९६ अङ्गुलका होता है। इस शरीरका जो मध्यभाग है, उसमें अग्निका स्थान है। उसका रंग तपाये हुए सोनेके समान माना गया है। उसकी आकृति त्रिकोण है। यह मैंने तुमसे सत्य बात बतायी है। गुदासे दो अङ्गुल ऊपर और लिङ्गसे दो अङ्गुल नीचेका जो स्थान है, उसे ही

मनुष्योंके शरीरका मध्यभाग समझो। वही मूलाधार है। मुनिश्रेष्ठ! वहाँसे नौ अङ्गुल ऊपर कन्दस्थान है। उसकी लंबाई-चौड़ाई चार-चार अङ्गुलकी है और आकृति मुर्गीके अंडेके समान है। वह ऊपरसे चमड़े आदिके द्वारा विभूषित है। मुनिपुङ्गव! उस कन्दस्थानके मध्यभागमें नाभि है, यों योगवेत्ता महात्माओंने कहा है। कन्दके मध्यभागमें जो नाड़ी है, उसका सुषुम्नाके नामसे वर्णन हुआ है। उसके चारों ओर ७२ हजार नाड़ियाँ हैं। उनमें चौदह प्रधान हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—सुषुम्ना, पिङ्गला, इडा, सरस्वती, पूषा, वरुणा, हस्तिजिह्वा, यशस्विनी, अलम्बुसा, कुहू, विश्वोदरा, पयस्विनी, शङ्खिनी और गान्धारा। ये ही चौदह नाड़ियाँ प्रधान मानी गयी हैं। इन चौदहमें भी प्रथम तीन ही सबसे प्रधान हैं। इनमें भी एक ही नाड़ी—सुषुम्ना सर्वश्रेष्ठ है। मुने! वेदान्तशास्त्रके ज्ञाता विद्वानोंने इसे ब्रह्मनाड़ी कहा है। पीठके मध्यभागमें जो वीणादण्ड (मेरुदण्ड) नामसे प्रसिद्ध हड्डियोंका समुदाय है, उससे होकर सुषुम्नानाड़ी मस्तकतक पहुँची हुई है। मुने! नाभि-कन्दसे दो अङ्गुल नीचे कुण्डलिनीका स्थान है। वह अष्टप्रकृतिरूपा* मानी गयी है। वह वायुकी यथावत् चेष्टा और जल तथा अन्न आदिको रोक करके ही सदा नाभि-कन्दके दोनों पार्श्वोंको घेरकर स्थित रहती है तथा ब्रह्मरन्ध्रके मुखको अपने मुखसे सदा आवेष्टित किये रहती है। सुषुम्नाके वाम-भागमें इडा और दक्षिण भागमें पिङ्गला स्थित है। सरस्वती और कुहू—ये दोनों सुषुम्नाके उभय पार्श्वोंमें स्थित हैं। गान्धारा और हस्तिजिह्वा—ये क्रमशः इडाके पृष्ठ और पूर्व भागोंमें स्थित हैं। पूषा और यशस्विनी क्रमशः पिङ्गलाके पृष्ठ और पूर्व भागोंमें स्थित हैं। कुहू और हस्तिजिह्वाके बीचमें विश्वोदरा नाड़ी है। यशस्विनी और कुहूके मध्य भागमें वरुणा नाड़ी प्रतिष्ठित है। पूषा और सरस्वतीके मध्यमें पयस्विनी नाड़ीकी स्थिति बतायी गयी है। गान्धारा और सरस्वतीके बीचमें शङ्खिनीका स्थान है। अलम्बुसा नाभिकन्दके मध्यभागसे होती हुई गुदातक फैली हुई है। सुषुम्नाका दूसरा नाम राका है। उसके पूर्वभागमें कुहू नामकी नाड़ी है। यह नाड़ी ऊपर और नीचे स्थित है। इसकी स्थिति दक्षिण नासिकातक मानी गयी है। इडा नामकी नाड़ी बायीं नासिकातक स्थित है। यशस्विनी नाड़ी दायें पैरके अँगूठेतक फैली हुई है। पूषा पिङ्गलाके पृष्ठभागसे होती हुई दायें नेत्रतक फैली हुई है और पयस्विनी नाड़ी विद्वानोंद्वारा दाहिने कानतक फैली हुई बतायी जाती है। सरस्वती नाड़ी ऊपरकी ओर जिह्वातक फैली हुई है। हस्तिजिह्वा नाड़ी बायें पैरके अँगूठेतक स्थित है। शङ्खिनी नामकी जो नाड़ी बतायी गयी है, वह बायें कानतक फैली हुई है। गान्धाराकी स्थिति वेदान्तज्ञोंद्वारा बायें नेत्रतक बतायी गयी है। विश्वोदरा नामकी नाड़ी नाभिकन्दके मध्यमें स्थित है॥ १—२२॥

'प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकर (कृकल), देवदत्त और धनञ्जय—ये दस प्राणवायु सब नाड़ियोंमें सञ्चरण करते हैं। इन दसोंमें प्राण आदि पाँच ही मुख्य हैं। सुव्रत! इन पाँचोंमें भी प्राण और अपान ही श्रेष्ठ एवं आदरणीय माने गये हैं। इनमेंसे प्राण नामक वायु मुख और नासिकाके मध्यभागमें, नाभिके मध्यभागमें तथा हृदयमें नित्य निवास करता है। अपान वायु गुदा, लिङ्ग, जाँघों, घुटनों, सम्पूर्ण उदर, कटि, नाभि तथा पिण्डलियोंमें भी सदा वर्तमान रहता है। व्यान वायु दोनों कानों, दोनों नेत्रों, दोनों कंधों, दोनों टखनों, प्राणके स्थानों और कण्ठमें भी व्याप्त रहता है। उदान वायुकी स्थिति दोनों हाथों और पैरोंमें जाननी चाहिये। समान वायु निःसंदेह सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त होकर रहता है। नाग आदि पाँचों वायु चमड़ी और हड्डी आदिमें रहते हैं॥ २३—२९॥

'साङ्कृते! उच्छ्वास और निःश्वास (श्वासको भीतर ले जाना और बाहर निकालना) और खाँसना—ये प्राणवायुके कार्य हैं। मल-मूत्रादिका त्याग अपान वायुका कार्य है। मुनिपुङ्गव! समान वायु सब शरीरको सम अवस्थामें रखता है। उदान वायु ही ऊपरकी ओर गमन करता है। वेदान्ततत्त्वके ज्ञाता विद्वानोंका कहना है कि व्यानवायु ध्वनिका व्यञ्जक है। महामुने! डकार, वमन आदि नाग वायुका कार्य है। शरीरमें शोभा आदिका सम्पादन धनञ्जय वायुका कार्य बताया गया है। आँखोंका खोलना, मीचना आदि कूर्म नामक वायुकी प्रेरणासे होता है। कृकर (कृकल) नामकी वायु भूख-प्यासका कारण है। तन्द्रा और आलस्य देवदत्त वायुका कार्य बताया गया है'॥ ३०—३४॥

'मुने! सुषुम्ना नाड़ीके देवता शिव और इडाके

* पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहङ्कार—ये आठ प्रकृतियाँ हैं।

देवता भगवान् विष्णु हैं। पिङ्गला नाड़ीके ब्रह्माजी और सरस्वती नाड़ीके विराट् देवता हैं। पूषाके देवता पूषा नामक आदित्य हैं। वरुणा नाड़ीके देवता वायु हैं। हस्तिजिह्वा नामक नाड़ीके वरुण देवता हैं। मुनिश्रेष्ठ! यशस्विनी नाड़ीके देवता भगवान् भास्कर हैं। जलस्वरूप वरुण ही अलम्बुसा नाड़ीके देवता माने गये हैं। कुहूकी अधिष्ठात्री देवी क्षुधा हैं। गान्धारीके चन्द्रमा देवता हैं। इसी प्रकार शङ्खिनीके देवता भी चन्द्रमा ही हैं। पयस्विनीके देवता प्रजापति हैं। विश्वोदरा नाड़ीके अधिदेवता भगवान् अग्निदेव हैं॥ ३५—३८॥

'वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ मुनीश्वर! इडा नामकी नाड़ीमें नित्य ही चन्द्रमा सञ्चार करते हैं और पिङ्गला नाड़ीमें सूर्यदेव सञ्चरण करते हैं। पिङ्गला नाड़ीसे इडा नाड़ीमें जो संवत्सरात्मक प्राणमय सूर्यका संक्रमण होता है, उसे वेदान्ततत्त्वके ज्ञाता महर्षियोंने उत्तरायण कहा है। इसी प्रकार इडासे पिङ्गलामें जो प्राणात्मक सूर्यका संक्रमण होता है, वह दक्षिणायन कहा गया है। जब प्राण इडा और पिङ्गलाकी संधिमें आता है, उस समय हे पुरुषश्रेष्ठ! इस शरीरके भीतर अमावस्या कही जाती है। जब प्राण मूलाधारमें प्रवेश करता है, उस समय हे तापसोंमें श्रेष्ठ विद्वद्वर! तपस्वियोंने आद्य विषुव नामक योगका उदय कहा है। मुनिश्रेष्ठ! जब प्राणवायु मूर्द्धा (सहस्रार)-में प्रवेश करता है, उस समय तत्त्वका विचार करनेवाले महर्षियोंने अन्तिम विषुव योगकी स्थिति बतायी है। समस्त उच्छ्वास और निःश्वास मास-संक्रान्ति माने गये हैं। इडा नाड़ीद्वारा जब प्राण कुण्डलिनीके स्थानपर आ जाता है, तब हे तत्त्वज्ञशिरोमणि! चन्द्रग्रहण-काल कहा जाता है। इसी प्रकार जब प्राण पिङ्गला नाड़ीके द्वारा कुण्डलिनीके स्थानपर आता है, तब हे मुनिवर! सूर्यग्रहणकी वेला होती है॥ ३९—४७॥

'अपने शरीरमें मस्तकके स्थानपर श्रीशैल नामक तीर्थ है। ललाटमें केदारतीर्थ है। हे महाप्राज्ञ! नासिका और दोनों भौंहोंके मध्यमें काशीपुरी है। दोनों स्तनोंकी जगहपर कुरुक्षेत्र है। हृदयकमलमें तीर्थराज प्रयाग है। हृदयके मध्यभागमें चिदम्बरतीर्थ है। मूलाधार-स्थानमें कमलालय तीर्थ है। जो इस आत्मतीर्थ (अपने भीतर रहनेवाले)-का परित्याग करके बाहरके तीर्थोंमें भटकता रहता है, वह हाथमें रखे हुए बहुमूल्य रत्नको त्यागकर काँच खोजता फिरता है। भावनामय तीर्थ ही सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है। भाव ही सम्पूर्ण कर्मोंमें प्रमाणभूत है। पत्नी और पुत्री दोनोंका आलिङ्गन किया जाता है, किंतु दोनोंमें भावका बहुत अन्तर होता है; पत्नीका आलिङ्गन दूसरे भावसे और पुत्रीका आलिङ्गन दूसरे भावसे किया जाता है। योगी पुरुष अपने आत्मतीर्थमें अधिक विश्वास और श्रद्धा रखनेके कारण जलसे भरे तीर्थों और काष्ठ आदिसे निर्मित देवप्रतिमाओंकी शरण नहीं लेते। महामुने! बाह्यतीर्थसे श्रेष्ठ आन्तरिक तीर्थ ही है। आत्मतीर्थ ही महातीर्थ है; उसके सामने दूसरे तीर्थ निरर्थक हैं। शरीरके भीतर रहनेवाला दूषित चित्त बाह्यतीर्थोंमें गोते लगानेमात्रसे शुद्ध नहीं होता, जैसे मदिरासे भरा हुआ घड़ा ऊपरसे सैकड़ों बार जलसे धो लिया जाय तो भी वह अपवित्र ही रहता है। अपने भीतर होनेवाले जो विषुव-योग, उत्तरायण-दक्षिणायन काल और सूर्य-चन्द्रमाके ग्रहण हैं, उनमें नासिका और भौंहोंके मध्यमें स्थित वाराणसी आदि तीर्थोंमें भावनाद्वारा स्नान करके मनुष्य शुद्ध हो सकता है। मुनिश्रेष्ठ! ज्ञानयोगमें तत्पर रहनेवाले महात्माओंका चरणोदक अज्ञानी मनुष्योंके अन्तःकरणको शुद्ध करनेके लिये उत्तम तीर्थ है'॥ ४८—५६॥

'शिवस्वरूप परमात्मा इस शरीरमें ही प्रतिष्ठित हैं; इनको न जाननेवाला मूढ़ मनुष्य तीर्थ, दान, जप, यज्ञ, काठ और पत्थरमें ही सर्वदा शिवको ढूँढ़ा करता है। साङ्कृते! जो अपने भीतर नित्य-निरन्तर स्थित रहनेवाले मुझ परमात्माकी उपेक्षा करके केवल बाहरकी स्थूल प्रतिमाका ही सेवन करता है, वह हाथमें रखे हुए अन्नके ग्रासको फेंककर केवल अपनी कोहनी चाटता है। योगी पुरुष अपने आत्मामें ही शिवका दर्शन करते हैं, प्रतिमाओंमें नहीं। अज्ञानी मनुष्योंके हृदयोंमें भगवान्‌के प्रति भावना जाग्रत् करनेके लिये ही प्रतिमाओंकी कल्पना की गयी है॥ ५७—५९॥

'जिससे भिन्न न कोई पूर्व है न पर (न कारण है, न कार्य), जो सत्य, अद्वितीय और प्रज्ञानघनस्वरूप है, उस आनन्दमय ब्रह्मको जो अपने आत्माके रूपमें देखता है, वही यथार्थ देखता है। महामुने! यह मनुष्यका शरीर नाड़ियोंका समुदायमात्र है, जो सदा सारहीन है। इसके प्रति आत्मभावका परित्याग करके बुद्धिके द्वारा यह निश्चय करो कि 'मैं' ही परमात्मा हूँ। जो इस शरीरमें

रहकर भी इससे सदा भिन्न है, महान् है, व्यापक है और सबका ईश्वर है, उस आनन्दस्वरूप अविनाशी परमात्माको जानकर धीर पुरुष कभी शोक नहीं करता॥ ६०—६२॥

'मुने! ज्ञानके बलसे भेदजनक अज्ञानका नाश हो जानेपर कौन आत्मा और ब्रह्ममें मिथ्या भेदका आरोप करेगा'॥ ६३॥

॥ चतुर्थ खण्ड समाप्त॥ ४॥

पञ्चम खण्ड

नाड़ी-शोधन एवं आत्मशोधनकी विधियाँ

साङ्कृतिने पूछा—'ब्रह्मन्! नाड़ीकी शुद्धि कैसे होती है, यह मुझे ठीक-ठीक और संक्षेपमें बताइये जिससे कि नाड़ी-शुद्धिपूर्वक सदा परमात्माका चिन्तन करते हुए मैं जीवन्मुक्त हो जाऊँ'॥ १॥

भगवान् दत्तात्रेयने कहा—'साङ्कृते! सुनो, मैं संक्षेपसे नाड़ी-शुद्धिका वर्णन करता हूँ। शास्त्रोंके विधिवाक्योंद्वारा जो कर्म बतलाये गये हैं, उनमें कर्तव्यबुद्धिसे संलग्न रहे। कामना और फलप्राप्तिके संकल्पको त्याग दे। योगके यम आदि आठों अङ्गोंका सेवन करते हुए शान्त एवं सत्यपरायण रहे। अपने आत्माके चिन्तनमें ही स्थित रहे और ज्ञानी महापुरुषोंकी सेवामें उपस्थित हो उनसे भलीभाँति शिक्षा ले। तत्पश्चात् पर्वतशिखर, नदी-तट, बिल्व-वृक्षके समीप, एकान्त वन अथवा और किसी पवित्र एवं मनोरम प्रदेशमें आश्रम बनाकर एकाग्रचित्तसे वहाँ रहे। फिर वहाँ पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके किसी आसनसे बैठे। ग्रीवा, मस्तक और शरीरको समान भावसे रखकर मुख बंद किये हुए भलीभाँति स्थिर हो जाय। नासिकाके अग्रभागपर चन्द्रमण्डलकी भावना करे और वहाँ प्रणवके बिन्दुमें तुरीयस्वरूप परमात्माको अमृतका स्रोत बहाते हुए नेत्रोंद्वारा प्रत्यक्ष देखे। उस समय चित्तको पूर्णतः एकाग्र रखे। फिर इडा नाड़ीके द्वारा (अर्थात् नासिकाके बायें छिद्रसे) प्राणवायुको खींचकर उदरमें भर ले और देहके मध्यमें स्थित जो अग्नि है, उसका ध्यान करे मानो उस वायुका सम्पर्क पाकर अग्निदेव ज्वालाओंके साथ प्रज्वलित हो उठे हों। फिर प्रणवके बिन्दु और नादसे संयुक्त अग्निबीज (रं)-का चिन्तन करे। तदनन्तर बुद्धिमान् साधक पिङ्गला नाड़ी (अर्थात् नासिकाके दाहिने छिद्रद्वारा) प्राणवायुको विधिपूर्वक शनैः-शनैः बाहर निकाले। फिर पिङ्गला नाड़ीद्वारा पूर्ववत् प्राणवायुको खींचकर अपने भीतर भर ले और अग्निबीजका चिन्तन करे। उसके बाद इडा नाड़ीद्वारा फिर उसे धीरे-धीरे बाहर निकाल दे। इस प्रकार एकान्तमें लगातार तीन-चार दिनोंतक अथवा प्रतिदिन तीनों संध्याओंमें तीन-चार या छः बार यह क्रिया करे। इससे उसकी नाड़ी शुद्ध हो जाती है। फिर इस नाड़ी-शुद्धिके पृथक् चिह्न भी उपलक्षित होते हैं। शरीर हल्का हो जाता है, जठराग्नि उद्दीप्त हो जाती है और अनाहतनादकी अभिव्यक्ति होने लगती है। यह चिह्न सिद्धिका सूचक है। जबतक यह चिह्न दिखायी न दे, तबतक इसी प्रकार अभ्यास करता रहे॥ २—१२॥

'अथवा यह सब छोड़कर आत्मशुद्धिका अनुष्ठान करे। यह आत्मा सदा शुद्ध, नित्य, सुखस्वरूप तथा स्वयम्प्रकाश है। अज्ञानवश ही यह मलिन प्रतीत होता है। ज्ञान होनेपर यह सदा विशुद्धरूपमें ही प्रकाशित होता है। जो ज्ञानरूपी जलसे अज्ञानरूपी मल और कीचड़को धो डालता है। वही सर्वदा शुद्ध है; दूसरा नहीं। क्योंकि वह दूसरा मनुष्य ज्ञानकी अवहेलना करके लौकिक कर्मोंमें आसक्त है'॥ १३-१४॥

॥ पञ्चम खण्ड समाप्त॥ ५॥

षष्ठ खण्ड

प्राणायामकी विधि, उसके प्रकार, फल तथा विनियोग

'साङ्कृते! अब मैं प्राणायामका क्रम बतलाता हूँ, इसे श्रद्धापूर्वक सुनो। पूरक, कुम्भक और रेचक—इन तीनोंसे जो प्राण-संयम सम्पन्न होता है, उसे प्राणायाम कहा गया है। ॐकारके जो तीन वर्ण अकार, उकार और मकार हैं, वे क्रमशः पूरक, कुम्भक और रेचकसे सम्बन्ध रखनेवाले बताये गये हैं। इन तीनों वर्णोंका

समूह ही प्रणव कहा गया है। अतः प्राणायाम भी प्रणवमय ही है। इडा नाड़ीके द्वारा वायुको धीरे-धीरे भीतर खींचकर उसे उदरमें भरे और वहाँ स्थित षोडशमात्राविशिष्ट अकारका चिन्तन करे। तत्पश्चात् उस उदरमें भरी हुई वायुको कुछ कालतक धारण किये रहे और उस समय चौंसठ मात्रासे विशिष्ट उकारके स्वरूपका चिन्तन करते हुए प्रणवका जप करता रहे। जबतक सम्भव हो, जपमें संलग्न रहकर वायुको धारण किये रहे। तदनन्तर विद्वान् पुरुष बत्तीस मात्राओंसे विशिष्ट मकारका चिन्तन करते हुए पिङ्गला नाड़ीके द्वारा धीरे-धीरे उस भरी हुई वायुको बाहर निकाले। यह एक प्राणायाम है। इसी प्रकार अभ्यास करता रहे॥ १—६॥

'पुनः पिङ्गला नाड़ीके द्वारा वायुको धीरे-धीरे भीतर भरते हुए षोडश मात्रासे विशिष्ट अकारस्वरूप प्रणवका एकाग्रचित्त होकर चिन्तन करे। जब वायु भर जाय तब विद्वान् पुरुष मन और इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए चौंसठ मात्राओंसे विशिष्ट उकारके स्वरूपका कुछ कालतक चिन्तन करे और प्रणवका जप करते हुए वायुको धारण किये रहे। इसके बाद बत्तीस मात्राओंसे विशिष्ट मकारका चिन्तन करते हुए इडा नाड़ीके द्वारा धीरे-धीरे वायुको निकाल दे। बुद्धिमान् पुरुष इसी प्रकार इडा नाड़ीके द्वारा वायुको भरते हुए पुनः अभ्यास करे। मुनीश्वर! इस प्रकार प्रतिदिन प्राणायामका अभ्यास करना चाहिये। नित्य ऐसा अभ्यास करनेसे मनुष्य छः महीनोंमें ज्ञानवान् हो जाता है। एक वर्षतक पूर्वोक्त प्रकारसे प्राणायाम करनेसे साधकको ब्रह्मका साक्षात्कार हो जाता है। इसलिये प्राणायामका नित्य अभ्यास करना चाहिये। जो मनुष्य योगाभ्यासमें संलग्न और सदा अपने धर्मके पालनमें तत्पर है, वह प्राणायामके द्वारा ही ज्ञान प्राप्त करके संसारसे मुक्त हो जायगा'॥ ७—११॥

'जिसके द्वारा बाहरसे वायुको उदरके भीतर भरा जाता है, वह पूरक है। जलसे भरे हुए कुम्भ (घड़े)-की भाँति वायुको उदरमें धारण किये रहना कुम्भक कहलाता है और उस वायुको पुनः उदरसे बाहर निकालना रेचक कहलाता है'॥ १२-१३॥

'जो प्राणायाम प्रस्वेदजनक होता है अर्थात् जिसको करते समय शरीरमें पसीना निकल आता है, वह सब प्राणायामोंमें अधम माना गया है। यदि प्राणायाम करते समय शरीरमें कम्पन होने लगे तो उसे मध्यम श्रेणीका प्राणायाम समझना चाहिये; तथा यदि प्राणायामके समय शरीर ऊपरको उठता हुआ-सा जान पड़े तो उसे उत्तम माना गया है। जबतक उत्थानकारक प्राणायाम सिद्ध न हो जाय, तबतक पूर्वोक्त दोनों प्रकारके प्राणायामोंका ही अभ्यास करता रहे। उपर्युक्त उत्तम प्राणायामके सम्पन्न हो जानेपर विद्वान् पुरुष सुखी हो जाता है। सुव्रत! प्राणायामसे चित्त शुद्ध हो जाता है और विशुद्ध चित्तमें अन्तःप्रकाशस्वरूप शुद्ध आत्मतत्त्वका साक्षात्कार होने लगता है। प्राणायाममें संलग्न रहनेवाले महात्मा पुरुषका प्राण चित्तके साथ संयुक्त हो परमात्मामें स्थित हो जाता है और उसका शरीर कुछ-कुछ ऊपरको उठने लगता है। इससे ज्ञान होकर मोक्ष प्राप्त होता है। रेचक और पूरक छोड़कर विशेषतः कुम्भकका ही नित्य अभ्यास करना चाहिये। यों करनेवाला योगी सब पापोंसे मुक्त होकर उत्तम ज्ञानको प्राप्त कर लेता है। वह मनके समान वेगवान् होता एवं मनपर विजय पा जाता है। उसके शरीरमें बालोंका पकना आदि दोष दूर हो जाते हैं। प्राणायाममें अनन्य निष्ठा रखनेवाले पुरुषके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। इसलिये पूर्ण प्रयत्न करके प्राणायामोंका अभ्यास करे'॥ १४—२०॥

'सुव्रत! अब मैं प्राणायामके विनियोग (रोगविशेषकी निवृत्तिके लिये उपयोग) बतलाता हूँ। दोनों संध्याओंके समय अथवा ब्राह्मवेलामें अथवा मध्याह्नके समय सदा बाहरकी वायुको भीतर खींचकर उदरमें भरने तथा उदर, नासिकाके अग्रभाग, नाभिके मध्यभाग और पैरके अँगूठेमें उस वायुको धारण करनेसे मनुष्य सब रोगोंसे मुक्त हो जाता है तथा सौ वर्षोंतक जीवित रहता है। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनीश्वर! नासिकाके अग्रभागमें धारण करनेसे भी प्राणवायुपर विजय प्राप्त हो जाती है। नाभिके मध्यभागमें धारण करनेसे समस्त रोगोंका निवारण हो जाता है। ब्रह्मन्! पैरके अँगूठेमें वायुका निरोध करनेसे शरीरमें हल्कापन आता है। योगका साधन करनेवाला जो मनुष्य सदा जिह्वाके द्वारा वायु खींचकर उसे पीता

रहता है, वह थकावट और जलनसे मुक्त होकर नीरोग रहता है। जिह्वाद्वारा वायुको खींचकर उसे जिह्वाके मूलभागमें ही रोक दें और शान्तभावसे (भावनाद्वारा) अमृतपान करे। यों करनेसे वह सब प्रकारके सुख प्राप्त कर लेता है। जो इडा नाड़ीके द्वारा वायुको खींचकर उसे भौंहोंके बीचमें धारण करता और (भावनाद्वारा) विशुद्ध अमृतका पान करता है, वह सब रोगोंसे मुक्त हो जाता है। वैदिक तत्त्वको जाननेवाले साङ्कृति मुनि! इडा और पिङ्गला नाड़ियोंके द्वारा वायुको खींचकर यदि उसे नाभिमें धारण करे तो उससे भी मनुष्य सब व्याधियोंसे मुक्त हो जाता है। यदि एक मासतक तीनों सन्ध्याओंके समय जिह्वाद्वारा धीरे-धीरे वायुको भीतर खींचकर और पूर्वोक्त अमृतपानकी भावना करते हुए उसे नाभिमें रोके रहे तो वात और पित्तसे उत्पन्न सम्पूर्ण दोष निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं। दोनों नासिका-छिद्रोंद्वारा वायुको भीतर खींचकर यदि उसे दोनों नेत्रोंमें धारण करे तो नेत्रके रोग नष्ट हो जाते हैं और कानोंमें उसे रोकनेसे कानके सब रोग नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार वायुको भीतर खींचकर यदि उसे मस्तकमें स्थापित करे तो सिरके सब रोग नष्ट हो जाते हैं। साङ्कृते! ये सब मैंने तुमसे सच्ची बातें बतायीं हैं'॥ २१—३१॥

'एकाग्रचित्त होकर स्वस्तिकासनसे बैठे और प्रणवका जप करते हुए धीरे-धीरे अपानवायुको ऊपरकी ओर उठाये और कान आदि इन्द्रियोंको दोनों हाथोंसे भलीभाँति दबाये रखे—दोनों अँगूठोंसे दोनों कानोंको ढक ले, दोनों तर्जनी अँगुलियोंसे दोनों नेत्र आच्छादित कर ले तथा अन्य दो-दो अँगुलियोंसे नासिकाके दोनों छिद्रोंको बंद कर ले; इस प्रकार ऊपरकी सब इन्द्रियोंको आच्छादित करके उस वायुको तबतक मस्तकमें धारण किये रहे, जबतक आनन्दमय अमृतका आविर्भाव न हो जाय। महामुने! यों करनेसे ही प्राण ब्रह्मरन्ध्रमें प्रवेश करता है। हे निष्पाप साङ्कृति! जब वायु ब्रह्मरन्ध्रमें प्रवेश कर जाय तब पहले शङ्खध्वनिके समान एक गम्भीर नाद होने लगता है। बीचमें वह नाद मेघकी गर्जनाके समान हो जाता है। जब वायु मस्तकके मध्य भलीभाँति स्थित हो जाती है, उस समय पर्वतसे गिरते हुए झरनेकी कलकल-ध्वनिके समान शब्द होने लगता है। महामते! ऐसा होनेके पश्चात् योगी अत्यन्त प्रसन्नताका अनुभव करते हुए साक्षात् आत्माके सम्मुख हो जाता है। फिर आत्मतत्त्वका सम्यक् ज्ञान होता है और उस योगके प्रभावसे संसार-बन्धनका नाश हो जाता है'॥ ३२—३७॥

'(अब प्राणवायुको जीतनेका दूसरा प्रकार बतलाते हैं—) गुदा और लिङ्गके बीचमें जो नाड़ी है, उसे सीवनी कहते हैं; क्योंकि वही शरीरके दो अर्धांशोंको सीलकर एक करती है। बुद्धिमान् मनुष्य अपने दायें और बायें टखनेसे उस सीवनीको स्थिरभावसे दबाकर बैठे और घुटनोंके नीचे जो सन्धि है, उसमें भगवान् त्र्यम्बकनामक ज्योतिर्लिङ्गकी भावना करे। साथ ही सरस्वतीदेवी और गणेशजीका भी ध्यान कर ले। फिर बिन्दुयुक्त प्रणवका जप करते हुए लिङ्गकी नलीके छिद्रद्वारा आगेकी ओरसे वायुको खींचकर उसे मूलाधारके मध्यमें स्थापित करे। वहाँ उस वायुको रोकनेसे वहाँकी अग्नि प्रदीप्त होकर कुण्डलिनीपर आरूढ़ हो जाती है। फिर उस अग्निको साथ लेकर वायु सुषुम्ना नाड़ीके द्वारा ऊपरको जाने लगती है। इस प्रकार अभ्यास करनेसे वायुपर विशेष रूपसे विजय प्राप्त हो जाती है'॥ ३८—४२॥

'मुनिश्रेष्ठ! पहले पसीना निकलना, फिर कम्पन होना तत्पश्चात् शरीरका ऊपरकी ओर उठना—ये सब वायुपर विजय प्राप्त कर लेनेके चिह्न हैं। इस प्रकार अभ्यास करनेवाले पुरुषके सब रोग मूलतः नष्ट हो जाते हैं। साङ्कृते! भगन्दर तथा अन्य सब रोग भी मिट जाते हैं। बड़े और छोटे—सभी पातक नष्ट हो जाते हैं। पाप नष्ट हो जानेसे चित्त परम शुद्ध और दर्पणकी भाँति स्वच्छ हो जाता है। तत्पश्चात् हृदयमें ब्रह्मा आदि देवताओंके लोकोंतकमें प्राप्त होनेवाले भोगजनित सुखोंके प्रति वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार जो संसारसे विरक्त होता है, उसे कैवल्य-मोक्षका साधनभूत ज्ञान प्राप्त हो जाता है। उस ज्ञानसे नित्य कल्याणमय परमात्मदेवका तत्त्व जान लेनेके कारण सब प्रकारके बन्धनोंका सर्वथा नाश हो जाता है। जिसने एक बार भी ज्ञानमय अमृतरसका आस्वादन कर लिया, वह सब कार्योंको छोड़कर उसीकी ओर दौड़ पड़ता है। ज्ञानी पुरुष इस सम्पूर्ण जगत्को

ज्ञानस्वरूप ही बताते हैं; जिनकी दृष्टि कुत्सित है, वे दूसरे-दूसरे अज्ञानी मनुष्य इस जगत्‌को विषयरूपमें देखते हैं। आत्मस्वरूपका भलीभाँति ज्ञान होनेपर अज्ञानका पूर्णतः नाश हो जाता है। और हे महाप्राज्ञ! अज्ञानके नष्ट हो जानेपर राग आदिका भी संहार हो जाता है। राग आदि न रहनेसे पुण्य-पापका भी लय हो जाता है। पुण्य-पापके न रहनेसे ज्ञानी मनुष्यको फिर शरीर धारण नहीं करना पड़ता॥ ४३—५१॥

॥ षष्ठ खण्ड समाप्त॥ ६॥

सप्तम खण्ड

प्रत्याहारके विविध प्रकार तथा फल

'महामुने! अब मैं प्रत्याहारका वर्णन करूँगा। विषयोंमें स्वभावतः विचरनेवाली इन्द्रियोंको बलपूर्वक वहाँसे लौटा लानेका जो प्रयत्न है, उसीको प्रत्याहार कहते हैं। 'मनुष्य जो कुछ देखता है, वह सब ब्रह्म है' यों समझते हुए ब्रह्ममें चित्तको एकाग्र कर लेना—यह ब्रह्मवेत्ताओंद्वारा बतलाया हुआ प्रत्याहार है। मनुष्य मरणकालतक जो कुछ भी शुद्ध या अशुद्ध कर्म करता है, वह सब परमात्माके लिये करे—परमात्माको ही उसे समर्पित कर दे; यह भी प्रत्याहार कहलाता है। अथवा नित्य और काम्य, सब प्रकारके कर्मोंको भगवान्‌की आराधनाके भावसे करे—उन कर्मोंद्वारा भगवान्‌की पूजा करे; इसे भी प्रत्याहार कहते हैं। अथवा वायुको एक स्थानसे खींचकर दूसरे स्थानपर स्थापित करे—दाँतके मूलभागसे वायुका आकर्षण करके उसे कण्ठमें स्थापित करे, कण्ठसे हृदयमें ले जाय, हृदयसे खींचकर उसे नाभि-प्रदेशमें स्थापित करे, नाभि-प्रदेशसे कुण्डलिनीमें ले जाकर रोके, कुण्डलिनीके स्थानसे हटाकर विद्वान् पुरुष उसे मूलाधारमें स्थापित करे, तदनन्तर अपानवायुके स्थानसे उस वायुको हटाकर कटिके दोनों भागोंमें ले जाय और वहाँसे जाँघोंके मध्यभागमें ले जाय। जाँघोंसे दोनों घुटनोंमें, घुटनोंसे पिंडलियोंमें और पिंडलियोंसे पैरके अँगूठेमें ले जाकर उस वायुको रोके। प्रत्याहार-परायण महात्माओंने प्राचीन कालसे इसीको प्रत्याहार कहा है'॥ १—९॥

'इस प्रकार प्रत्याहारके अभ्यासमें लगे हुए महात्मा पुरुषके सब पाप तथा जन्म-मरणरूप व्याधि नष्ट हो जाती है। स्वस्तिकासनका आश्रय ले विद्वान् पुरुष स्थिरभावसे बैठे और नासिकाके दोनों छिद्रोंसे वायुको भीतर खींचकर उसे पैरसे लेकर मस्तकतकके स्थानोंमें पूर्ण कर दे। दोनों पैरोंमें, मूलाधारमें, नाभिकन्दमें, हृदयके मध्यभागमें, कण्ठके मूल-भागमें, तालुमें, भौंहोंके मध्यभागमें, ललाटमें तथा मस्तकमें वायुको धारण करे। यह वायु-धारणात्मक प्रत्याहार है'॥ १०—१२॥

'विद्वान् पुरुष एकाग्रचित्त हो देहसे आत्मबुद्धिको हटाकर उसे स्वयं ही निर्द्वन्द्व एवं निर्विकल्पस्वरूप अपने आत्मामें स्थापित करे। वेदान्ततत्त्वके जाननेवाले महात्माओंने इसीको वास्तविक प्रत्याहार बताया है। इस प्रकार प्रत्याहारका अभ्यास करनेवाले पुरुषके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है'॥ १३—१४॥

॥ सप्तम खण्ड समाप्त॥ ७॥

अष्टम खण्ड

धारणाके दो प्रकार

'सुव्रत! अब मैं पञ्च धारणाओंका वर्णन करूँगा। अपने शरीरके भीतर जो आकाश है, उसमें बाह्य आकाशकी धारणा करे। इसी प्रकार प्राणमें बाहरी वायुकी, जठरानलमें बाह्य अग्निकी, शरीरगत जलके अंशमें ही बाह्य जल-तत्त्वकी तथा शरीरके पार्थिव भागमें ही समस्त पृथ्वीकी धारणा करे और प्रत्येक तत्त्वकी धारणाके समय क्रमशः हं, यं, रं, वं, लं—इन बीज-मन्त्रोंका उच्चारण करे। यह धारणा सर्वश्रेष्ठ बतायी

गयी है; यह सब पापोंका नाश करनेवाली है। पैरसे लेकर घुटनेतकका भाग पृथिवीका अंश माना गया है। घुटनेसे लेकर गुदातकका भाग जलका अंश बताया जाता है। गुदासे ऊपर हृदयतकका भाग अग्निका अंश है। हृदयसे ऊपर भौंहोंके मध्यभागतक वायुका अंश है तथा मस्तकका भाग आकाशका अंश बताया गया है। हे महाप्राज्ञ! पृथिवीके भागमें ब्रह्माका, जलके अंशमें भगवान् विष्णुका, अग्निके अंशमें महादेवजीका, वायुके अंशमें ईश्वरका तथा आकाशके अंशमें सदाशिवका ध्यान करे*'॥ १—६॥

'अथवा मुनिश्रेष्ठ! तुमसे एक दूसरी धारणाका वर्णन करता हूँ। बुद्धिमान् पुरुष अन्तर्यामी पुरुष (आत्मा)-में सबपर शासन करनेवाले बोधमय, आनन्दमय एवं कल्याणस्वरूप परमात्माकी प्रतिदिन धारणा करे। इससे सब पापोंकी शुद्धि हो जाती है। कार्यस्वरूप ब्रह्मा आदिका अपने-अपने कारणमें लय करके सबके परम कारण, अनिर्वचनीय तथा बुद्धिसे परे जो अव्यक्त परमात्मा हैं, उनकी अपने आत्मामें धारणा करे—अर्थात् ये साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा ही अन्तर्यामी आत्माके रूपमें विराजमान हैं, ऐसा निश्चय करे तथा इस प्रकार आत्मधारणा करते समय अपने मनको सम्पूर्ण कलाओंसे युक्त प्रणवस्वरूप परमात्मामें ही स्थापित करे। साथ ही मनके द्वारा समस्त इन्द्रियोंको भी अपने-अपने विषयोंसे हटाकर आत्मामें संयुक्त करे'॥ ७—९॥

॥ अष्टम खण्ड समाप्त॥ ८॥

नवम खण्ड

दो प्रकारके ध्यान तथा उनका फल

'अब मैं संसार-बन्धनका नाश करनेवाले ध्यानका प्रकार बतलाता हूँ। जो समस्त संसाररूपी रोगके एकमात्र औषध, ऊर्ध्वरेता, भयङ्कर नेत्रोंवाले, योगीश्वरोंके भी ईश्वर, विश्वरूप तथा महेश्वररूप हैं, उन ऋत एवं सत्यस्वरूप परब्रह्म परमात्माका अपने आत्मारूपसे आदरपूर्वक चिन्तन करे। अपनी बुद्धिमें यह निश्चय करे कि वह परब्रह्म परमात्मा मैं ही हूँ'॥ १-२॥

'अथवा ध्यानका दूसरा प्रकार यों है—जो सत्यस्वरूप, सबका ईश्वर, ज्ञानरूप, आनन्दमय, अद्वितीय, अत्यन्त निर्मल, नित्य तथा आदि, मध्य एवं अन्तसे रहित है, स्थूल प्रपञ्चसे सर्वथा परे है, आकाशसे भिन्न है, स्पर्शमें आने योग्य वायुसे भी विलक्षण है, नेत्रोंसे दीख पड़नेवाले अग्नितत्त्वसे भी सर्वथा भिन्न है, रसस्वरूप जल और गन्धस्वरूप पृथिवीसे भी सर्वथा विलक्षण है, जिसे प्रत्यक्षादि प्रमाणोंद्वारा नहीं जाना जा सकता, जो अनुपम है, देहसे अतीत है, उस सच्चिदानन्दस्वरूप एवं अन्तरहित परब्रह्मका अपने आत्माके रूपमें ध्यान करे; बुद्धिके द्वारा यह निश्चय करे कि वह परब्रह्म परमात्मा मैं ही हूँ। इस प्रकार किया हुआ निर्विशेषका ध्यान मोक्षका साधक होता है'॥ ३—५॥

'इस तरह ध्यानके अभ्यासमें लगे हुए महात्मा पुरुषको क्रमशः वेदान्तवर्णित ब्रह्मतत्त्वका विशेष ज्ञान हो जाता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है'॥ ६॥

॥ नवम खण्ड समाप्त॥ ९॥

दशम खण्ड

समाधि एवं उसका फल

'अब मैं संसार-बन्धनका नाश करनेवाली समाधिका वर्णन करूँगा। परमात्मा और जीवात्माकी एकताके विषयमें निश्चयात्मक बुद्धिका उदय होना ही समाधि है। यह आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, कूटस्थ—एकरस एवं सब प्रकारके दोषोंसे रहित है। यह एक होते हुए भी मायाजनित भ्रमके कारण भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है;

* यह पञ्चभूतोंकी धारणा 'रामतापनीयोपनिषद्' पृष्ठ ५४७ की टिप्पणीमें 'भूत-शुद्धि' के नामसे दी गयी है, उसको पढ़नेसे भूतधारणाका स्वरूप स्पष्ट हो जायगा।

स्वरूपतः उसमें कोई भेद नहीं है। अतः केवल अद्वैत ही सत्य है। प्रपञ्च या संसार नामकी कोई वस्तु नहीं है। जैसे आकाश ही घटाकाश और मठाकाशके नामसे पुकारा जाता है, उसी प्रकार अज्ञानी पुरुषोंने एक ही परमात्माको जीव और ईश्वर—इन दो रूपोंमें कल्पित कर लिया है। मैं न देह हूँ, न प्राण हूँ, न इन्द्रियसमुदाय हूँ और न मन ही हूँ; सदा साक्षीरूपमें स्थित होनेके कारण मैं एकमात्र शिवस्वरूप परमात्मा हूँ—मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकारकी जो निश्चयात्मिका बुद्धि है, वही यहाँ समाधि कहलाती है'॥ १—५॥

'मैं वह परमात्मा ही हूँ, संसार-बन्धनमें बँधा हुआ जीव नहीं हूँ; इसलिये मुझसे भिन्न किसी भी वस्तुकी किसी भी कालमें सत्ता नहीं है। जैसे फेन और तरङ्ग आदि समुद्रसे ही उठते हैं और पुनः समुद्रमें ही लीन हो जाते हैं, उसी प्रकार यह जगत् मुझमें ही उत्पन्न और विलीन होता रहता है। अतः सृष्टिका कारणभूत समष्टि मन भी मुझसे पृथक् नहीं है। यह जगत् और माया भी मुझसे अलग कोई अस्तित्व नहीं रखते। इस प्रकार जिस पुरुषको ये परमात्मा अपने आत्मारूपसे अनुभव होने लगते हैं, वह परम पुरुषार्थस्वरूप साक्षात् परमामृतमय परमात्मभावको प्राप्त हो जाता है। जब योगीके मनमें सर्वत्र व्यापक आत्मचैतन्यका अपरोक्ष अनुभव होने लगता है, तब वह स्वयं परमात्मस्वरूपमें प्रतिष्ठित हो जाता है। जब ज्ञानी महात्मा सब भूतोंको अपनेमें ही देखता है और अपनेको ही सम्पूर्ण भूतोंमें प्रतिष्ठित देखता है, तब वह साक्षात् ब्रह्म हो जाता है। जब समाधिमें स्थित पुरुष परमात्मासे एकीभूत होकर अपनेसे भिन्न किसी भी भूतको नहीं देखता, तब वह केवल परमात्मस्वरूपसे प्रतिष्ठित होता है। जब मनुष्य केवल अपने आत्माको ही परमार्थ—सत्यस्वरूप देखता है और सम्पूर्ण जगत्को मायाका विलासमात्र मानता है, तब उसे परमानन्दकी प्राप्ति हो जाती है।'

महामुनि भगवान् दत्तात्रेयजी इस प्रकार उपदेश देकर मौन हो गये तथा मुनिवर साङ्कृति उस उपदेशको हृदयङ्गम करके अपने यथार्थ स्वरूपसे स्थित हो अत्यन्त निर्भय स्थितिमें पहुँचकर सुखसे रहने लगे॥ ६—१३॥

॥ दशम खण्ड समाप्त॥ १०॥

॥ सामवेदीय जाबालदर्शनोपनिषद् समाप्त॥

शान्तिपाठ

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

भीतर-बाहर नारायण ही व्याप्त हैं

यच्च किञ्चिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा।
अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः॥ (नारायणोप०)

जो कुछ जगत् देखने या सुननेमें आता है, उस सबको भीतर और बाहरसे व्याप्त करके नारायण स्थित हैं।